International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 5; September 2018; Page No. 22-23

आधुनिक काल के उपन्यासों में दलित विमर्श

डॉ० तबस्सुम खान [1], विनीता कुमारी शर्मा [2]

[1] शोध मार्गदर्शिका, श्री सत्य सॉंई प्रौद्योगिकी एवं चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय सीहोर, मध्य प्रदेश, भारत।

[2] शोधार्थी, श्री सत्य सॉंई प्रौद्योगिकी एवं चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय सीहोर, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

हिन्दी उपन्यासों में दलित समाज की सामाजिक दशा और दिशा का वास्तविक रूप मिलता है। उनकी आर्थिक तंगी, रोटी, कपड़ा और मकान के लिए संघर्ष, उच्चवर्गीय समाज का बढ़ता अन्याय अत्याचार। इसी के साथ–साथ इक्कीसवीं सदी में दलित अपने उपर होने वाले अन्यायों का प्रतिकार करने लगा है। अपनी सामाजि सुरक्षा हेतु कानून का सहारा लेने लगा है। अपने सामाजिक विकास के लिए शिक्षा ग्रहन कर रहा है। फिर भी समाज की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पा रहा है। इसकी वजह वो सरकार से सवाल पूछने लगा है। हम यहाँ के ही मूल रहवासी होने के बावजूद भी समाज में खेतों का समान बँटवारा नहीं होता तबतक सामाजिक समानता नहीं आएगी। और ना ही दलितों की रोटी की चिंता मिट पाएगी। अतः दलित विमर्श में दलित को केंद्र में रखकर जो बहस हुई है उससे दलित समाज को अपनी पीड़ा, दुःख, दर्द का अहसास होगा। उनमें नई चेतना जाग उठेगी। और वह अपनी मुश्किलों को डटकर सामना करेगा और विकास कि पथ पर जाता हुआ नजर आएगा। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों का इससे बड़ा दलितोंको योगदान और क्या हो सकता है।

मूल शब्द : दलित समाज, सामाजिक दशा, उच्चवर्गीय समाज।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य आज पूरे समाज को रेखांकित करने में सफल हो चुका है। उसने अपने अलग – अलग विधाओं के माध्यम से समाज को वाणी दी है। चाहे वो दलित हो, या आदिवासी, नारी, पुरूष, मुस्लिम हो या समाज के विभिन्न वर्ग हो इन सभी का दुःख दर्द हमें हिन्दी साहित्य में देखने को मिलता है। यही साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उसके माध्यम से हमें समाज कि दशा और दिशा का पता चलता है। तो दलित साहित्य कैसे अनछुहा रह सकता है। दलित साहित्य के बारे में एक खास बात एह देखने को मिलती है। दलित साहित्य केवल दलित ही लिख सकता है। क्योंकि उसमें उसका भोगा हुआ यथार्थ मौजुद रहता है। इसीलिए यह साहित्य सहानुभूति का साहित्य नहीं है?बल्कि स्वानुभूती का साहित्य है। यही वजह है की इसमें अनुभूती की सच्चाई और वास्तविक्ता मौजूद रहती है। इसमें कल्पना की उड़ान नहीं होती। शुरूवाती दौर में दलित साहित्य पर काफी विवादों का, मजाक का, या अश्लिलता का साहित्य कहकर इसकी अवहेलना की गई। जैसे 'अपने–अपने पींजरे' आत्मकथा की हुई। पर यहीं से उसे जमीन मिलीं। उसने दलित साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। इतना हि नहीं तो उसके लिए कई रास्ते खुले। जिस वजह से आज दलित अपनी पीड़ा, वेदना को वाणी देने में कामयाब साबित हुआ है।

दलित विमर्श पर बहस करने से पहले दलित शब्द को जान लेना काफी जरूरी है। विद्वानों ने 'दलित' शब्द की परिभाषाएँ अपने–अपने तरिके से दी है। जैसे डॉ.कुसुम मेघवाल अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग' में दलित को इस रूप में परिभाषित किया है "दलित का शाब्दिक अर्थ है ुचिला हुआ। अतः दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भो में अर्थ होगा, वह जाति समुदाय जो अन्यायपूर्वक सवर्णो या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो। दलित शब्द व्यापक रूप में पीड़ित के अर्थ में आता है। पर दलित वर्ग का प्रयोग हिन्दू समाज व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप में शूद्र माने जाने वाले वर्णों के लिए रूढ हो गया है। दलित वर्ग में वे सभी जातियॉ सम्मिलित हैं जो जाति सोपान क्रम में निम्न स्तर पर है और जिन्हें सदियों से दबाकर रखा गया।"

कंवल भारती के अनुसार "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गन्दे यार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछुतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, ओर इनके, अन्तर्गत वहीं जातियॉ आती है, जिन्हें अनुसूचित जातियॉ कहा जाता है।"

श्री प्रेमकुमार मणि ने दलित साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है "दलितों के लिए दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है। यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। सम्पूर्ण विज्ञान इसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता का उद्वार इसका इष्ट है। 'दलित' साहित्य वह प्रकाश पुंज है, जो अंधेरे में उतरा है।"

उपर्युक्त परिभषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि दलित की पहचान विभिन्न समय में अस्पृश्य, शुद्र, दास, हरिजन, बहिष्कृत, डिप्रेस्ड क्लासेस आदि रूपों में थी। इसीलिए यह सारे शब्द उसके रूप के परिचायक हैं। इतना ही नहीं तो दलित निचली श्रेणी का वर्ण होने से उसके साथ अन्याय, अत्याचार होता था। या उसके बारे में यह भी कहा जा सकता है उसका जीवन पशुतुल्य था। उन्हें शिक्षा लेने का, अपनी रोटी के लिए अलग व्यवसाय करने का, या समाज में मान सम्मान पाने का हक्क नहीं था। हिन्दू व्यवस्था में यह समाज सदियों से शोषण का शिकार था। यही वजह है कि यह समाज अभी–तक उपने विकास से कोसों दूर दिखाई देता है।

दलित उपन्यासों में दलित विमर्श अक्सर चर्चा का विषय रहा है। इस पर अनगिनत संगोष्ठियॉ भी हुई पर इनमें इसकी सामाजिक अवस्था पर ही जादा बहस हुई दिखाई देती है। इनसे नाहीं इनकी स्थिती में सुधार आया है। नाही यह समाज, समाज की मुख्यधारा से जुड़ पाया है? पर इस बात से हम ना नहीं कह सकते की

उपन्यासों में व्यक्त होता दलित जीवन, उनपर होनेवाले अन्याय, अत्याचारों से दलित समाज सचेत होने लगा है। उनमें परिवर्तन हो रहा है। वह अपने अन्याय, अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने लगें है। इक्कीसवीं सदी का 'तर्पण' उपन्यास सवर्ण और अवर्ण समाज की लड़ाई का वास्तविक दस्तावेज है। इस उपन्यासों में दलित समाज गरीब होने से, उन्हें किन–किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसका सफल रूप में चित्रण हुआ है। यह नायिका प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्रा रजपत्तियॉ है। वह एक दलित युवति होने से उसे हर रोज रोटी के लिए काम करना पड़ता है। इसिलिए वह दूसरों के खेत में काम करने के लिए जाती है। तो उच्चवर्गीय युवक चंदर उसे शाम के समय में अकेली घर आते देखकर उसके साथ बलात्कार करने की कोशिश करता है। पर रजपति उसका विरोध करते हुए उससे छुटकारा इस रूप में पाती है। झटके हुए हाथ की अँगूठी की नोक ऑचल से अरझी तो ऑचल फट गया। धान खेत में गिरने लगा। वह ऑचल संभालती इसके पहले ही चन्दर ने लपककर उसे कन्धों से पकड़ा और पैर में लंगी मार दिया। वह सँभल न पाई। गिर गई और ऊपर आए चन्दर के बाल पकड़कर खींचती हुई चिल्लाई –"अरे माई रे गोहर लागा धरमुआ के पुतवा उधिरान बारे।"

रजपत्तियॉ अपने साथ काम करने आई महिलाओं को आवाज लगाकर चन्दर से छुटकारा पाती है। पर दुःख की बात यह है कि इस घटना से दलित समाज की लड़कियों की सामाजिक सुरक्षा खतरे में दिखाई देती है? दूसरी बात इसी प्रकार की घटना रजपतियॉ की बहन के साथ भी हुई थी, तो उसने कुंवे में छँलाग लगाकर अपनी जीवन यात्रा समाप्त की। इतना बड़ा जुल्म सहने के बाद जब रजपति के पिता चन्दर के पिता धरमू पंडित से इसकी शिकायत करने जाते है। तो उच्चवर्गीय समाज का गुरूर इस रूप में देखने को मिलता है।

"ठीक है, लेकिन तुम भी तो सयानी बेटी के बाप हो पियारे। तुम्हे भी ऑंख, कान खोलकर रखना चाहिए। लौंडिया जवान हो गई तो बिदाई करके कंटक साफ करो। घर में बैठने का क्या मतलब?"

उच्चवर्गीय पंडिताइन का यह गर्व पियारे इस रूप में तोड़ देता है। ओर अपने अन्याय का प्रतिकार इस रूप में करता है। पियारे गरम हो गया, "किसी गुमान में मत भूलिए पंडिताइन। अब हम ऊ चमार नहीं है कि कान, पूँछ दबाकर सब सह, सुन लेंगे। चिउँटे को गुड़ का मजा लेना महँगा कर देंगे।"

इस संदर्भों के जरिए यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वतंत्रता के इतने साल बाद भी दलित पर काफी घिनौने रूप में अन्याय होते है। यह इस बात का सबूत है। आगे जाकर उच्चवर्गीय समाज श्रीमंत होने से पुलिस से लेकर कोर्ट–कचहरी तक पैसे खिलाकर अपने अन्यायों पर विजय पा लेता है। और दलित समाज को हर हाल में अन्याय सहना पड़ता है। यह वास्तविक परिस्थिती का एहसास वर्पण उपन्यास में देखने को मिलता है।

उपन्यास में चित्रित बलात्कार की घटना से दलित समाज में हलचल पैदा होती है। तब वह अपनी सच्चाई को इस प्रकार बयॉ करते है। उन्हें लगता है, हम तो यहॉ के ही मूल रहवासी है तो हमारे नाम के खेत कहा गायब हुए? सारे खेतों पर उन्हीं लोगों का कब्जा क्यों है? अगर ऐसी ही परिस्थिति रही तो हमें रोटी पाने मं आसानता कैसे हासिल होगी? अगर चोरी करना पाप है तो हम यह जुर्म हजार बार करेंगे? इसी सामाजिक विषमता को शिवमूर्ति ने इस प्रकार चित्रित किया है।

"क्यों नहीं करेंगे चोरी।" विक्रम नए लड़कों से कहता है, "सारे खेतों पर उन्ही लोगों से का कब्जा क्यों है? हमारे हिस्से के खेत कहा गए? मुर्दा गाड़ने भर की जगह भी हमारे हिससे में नहीं छोड़ा इन लोगों ने। मजदूरी से अनाज मिल जाएगा लेकिन साग–पात, गन्ना, गंजी, मटर, चने का स्वाद हमें कैसे मिलेगा? क्या इनका स्वाद लिए बिना ही हमारी जिन्दगी बीत जाएगी? तब इनकी चोरी जुर्म क्यों है? जुर्म है तो यह जुर्म हम हजार बार करेंगे। "

इस संदर्भ के जरिए शिवमूर्ति यह नई बात सामने लाना चाहते है कि दलित समाज की लड़ाई इक्कीसवीं सदी में केवल इज्जत की, बढ़ते अन्याय, अत्याचार की नहीं है। उसकी लड़ाई समाज के मुख्यधारा के साथ जुड़ने की है। वे सामाजिक समानता केवल जाति–पाति, खाने–पीने या व्यवहार में नहीं मानते। दलित की सामाजिक समानता खेतों के समान बँटवारे के रूप में, समन ओहदे के रूप में दिखाई देती है। दलित आज जान चुका है उसके अविकसित रहने की वजह? यही दलित विमर्श में अलग और परिवर्तनवादी विचार तर्पणकार ने दिया है।

इक्कीसवीं सदी का चर्चित एवं सशक्त उपन्यास 'सूअरदान' में दलित समाज को उच्चवर्गीय राजनीतिक लोग किस प्रकार सहारा लेकर अपना हित साधना चाते है। इसका सजीव चित्रण मिलता है। गांव सिंहासनखेड़ा दलित ग्राम प्रधान के लिए रिजर्व कर दिया गया है।पर उच्चवर्गीय सत्तयनारायण त्रिपाठी दलित उम्मीदवार भगतू पासी के जरिए राजनिति में फिर से जिन्दा रहना चाहते है। क्योंकि वे अपना ख्रूी खेल ओर खेल सके। अपना विकास साध सके। भोले–भाले भगतू पासी जैसे दलित व्यक्ति पद के लोभ में या भयवश त्रिपाठी जैसे लोगों का मोहरा बनते है। जिससे वह स्वयं ही तबाह हो जाते है और साथ में समाज को भी तबाह कर देते है। ऐसे चालाक सवर्ण सदियों से ऐसे ही खेल खेलते आए है जिससे दलित समाज अविकसित रह रहा है।

"एक तरफ सत्यनारयण त्रिपाठी थे, जो अपने डमी उम्मीदवार भगतू पासी की आड़ में ग्राम प्रधानी का पद अपने पास रखना चाहते थे। अपना खूनी खेल जारी रखना चाहते थे। ऐसा खेल जो वर्षों से दलितों, पिछडों, गरीब सवर्णों और अल्पसंख्यकों के साथ खेलते आए थे। सरकार गांव वालों को जो कुछ देना चाहती थी, वे स्वयं अपने गुर्गी के साथ हड़प जाना चाहते थे। भगतू पासी भयवश या पद के लोभ में सत्यनारायण त्रिपाठी की हां में हां मिला रहा था। उसे यह नहीं पता था। कि वह सत्यनारायण त्रिपाठी की शतरंज का एक मोहरा है। जितना वे उसको चलाते वह चलता। शह और मात के खेल में मात होने पर उसको शहीद कर देते। दलितों के साथ ऐसे चालाक सवर्ण सदियों से ऐसे ही खेल खेलते आए है।"

इस संदर्भ के जरिए हम कह सकते है, दलित का शोषण केवल, काम पे, या सामाजिक स्तर पर, या राजनिति में ही नहीं तो सारी जगह पर होता है। तब इनका सामाजिक विकास कैसे सम्भव है?

संदर्भ

1. शिवमूर्ति–तर्पण पृ. 9–10
2. वहीं पृ.14
3. वहीं पृ.14
4. वहीं पृ.46
5. रूपनारायण सोनकर–सूअरदान–पृ.40–41
6. कंवल भारती, सुध्दरत आम आदमी अंक (41–42) 1998, पृ.14
7. डॉ. कुसुम मेघवाल, हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग, पृ.1
8. प्रेमकुमार मणि, दलित साहित्यःएक परिचय(लेख)
9. दलित साहित्यः चिंतन के विविध आयाम स. एन सिंह. पृ.57.